मृत्युदंड की अपनी व्यवस्था पर कायम सुप्रीम कोर्ट

जिस वक्त देश का ध्यान फांसी से राहत पाने की याकूब मेमन की याचिका पर लगा था, सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने राजीव गांधी के हत्यारों के बारे में महत्त्वपूर्ण निर्णय दिया। याकूब की तरफ से पेश हुए वकील न्यायमूर्ति दीपक मिश्र, जस्टिस प्रफुल्ल सी पंत और जस्टिस अमिताव रॉय की खंडपीठ के सामने यह साबित करने में नाकाम रहे कि 1993 के मुंबई बम धमाके के इस मुजरिम को डेथ वारंट जारी करने में उचित प्रक्रिया का पालन नहीं हुआ। लेकिन राजीव गांधी हत्याकांड में प्रधान न्यायाधीश एचएल दत्तू, जस्टिस एफएमआई कलिफुल्ला, न्यायमूर्ति पीसी घोष, जस्टिस एएम सप्रे और न्यायमूर्ति यूयू ललित की संविधान बेंच ने केंद्र की सुधार (क्यूरेटिव) याचिका ठुकरा दी। बेंच ने निर्णय दिया कि पूर्व प्रधानमंत्री के तीन हत्यारों- मुरुगन, संतन और पेरारिवलन- के मृत्युदंड को उम्रकैद में बदलने का फैसला सही है। सुप्रीम कोर्ट ने फरवरी 2014 में इन अपराधियों को राहत अपनी इस व्यवस्था के आधार पर दी थी कि उनकी फांसी की तारीख तय करने में सरकार ने अत्यधिक देर लगा दी। तीनों हत्यारों को टाडा कोर्ट ने जनवरी 1998 में फांसी की सजा सुनाई थी। सुप्रीम कोर्ट ने मई 1999 में इसकी पुष्टि की। मगर उसके बाद एक दशक से भी ज्यादा समय गुजर जाने के बावजूद इस सजा पर अमल नहीं हुआ। सुप्रीम कोर्ट ने जनवरी 2014 में यह व्यवस्था दी थी कि मृत्युदंड की पुष्टि के बाद फांसी देने में अत्यधिक और अतार्किक देर इस सजा को आजीवन कारावास में बदलने का आधार होगा। तब कोर्ट ने सजा-ए-मौत पाए 15 कैदियों की फांसी को उम्रकैद में तब्दील कर दिया। उसी व्यवस्था के तहत राजीव गांधी के हत्यारों ने भी अपील दायर की, जिसे कोर्ट ने स्वीकार कर लिया था। मगर इस मामले में तब बड़ा विवाद खड़ा हो गया, जब सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के अगले ही दिन तमिलनाडु सरकार ने इन तीनों अपराधियों के साथ-साथ राजीव गांधी हत्याकांड में सजायाफ्ता चार दूसरे मुजरिमों को रिहा करने का आदेश दे दिया। तब सुप्रीम कोर्ट ने उस पर रोक लगाई। कुछ रोज पहले उसने इस बारे में राज्य सरकारों को दिशा-निर्देश दिए कि किन कैदियों की रिहाई हो सकती है और किनकी नहीं। परंतु केंद्र चाहता था कि राजीव गांधी के हत्यारों पर रहम ना दिखाया जाएं। उचित ही सर्वोच्च न्यायालय ने यह अर्जी नहीं मानी, क्योंकि ये हत्यारे आज जिंदा हैं तो दोष 1999 के बाद से सत्ता में रही सरकारों का है।

• जीने की राह | पं. विजयशंकर मेहता | web:hamarehanuman.com

संसार व ईश्वर के फर्क को समझें

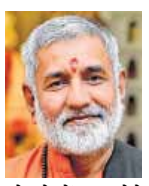

एक विरोधाभास सभी के जीवन में अपने-अपने ढंग से बना रहता है। जो लोग भगवान को मानते हैं वे पूरी ताकत संसार छोड़ने में लगा देते हैं। जिन्होंने अपनी सारी शक्ति संसार में झोंक दी है, उन्हें भगवान से परहेज शुरू हो जाता है। कुछ लोग दोनों को पकड़े हुए हैं, तो पूरा जीवन उलझन और भ्रम में पड़े रहते हैं बस इसी भ्रम के कारण भक्त भी तनाव में पाए जाते हैं, जबकि भक्ति और अशांति ये साथ नहीं हो सकते। अशांत चित्त से भक्ति हो ही नहीं सकती। ध्यान रखिए, संसार में रहना है, तो उसे पाने की कोशिश मत करिए, उसमें रहना ही उसे पाना है। संसार कभी किसी को नहीं मिला, क्योंकि संसार कभी भी स्थिर नहीं रहता, प्रतिपल नष्ट हो रहा है। अब परमात्मा की बात करते हैं। भगवान नित्य प्राप्त है और जो मिला ही हुआ है उसे फिर क्या पाना। थोड़ा-सा होश जगाइए वह अपने आप दिख जाएगा। यह आपकी क्षमताओं में शामिल है। एक ताकत भगवान में भी नहीं है और वह है अपने भक्तों से दूर जाना। हम ही उनसे दूर भागते हैं। संसार पाने का ऐसा युद्ध है, जिसमें जीत भी जाएं तो हाथ में हार ही लगेगी। यदि पाए हुए परमात्मा के लिए होश जगाने के युद्ध में हार भी जाएं तो भी आपकी जीत ही है। इस हार में भी एक तृप्ति, एक सुगंध है। संसार मिल भी जाए तो सावधान हो जाना, क्योंकि इस पाए हुए में भी बहुत कुछ खोना है। हमारे जितने संत, महात्मा, फकीर हैं ये भगवान के सामने हारे हुए हैं और इसीलिए जीत गए। नेपोलियन व सिकंदर ने दुनिया जीत ली पर वे सबसे अधिक हारे हुए लोग हैं। हमें संसार और परमात्मा के इस अंतर को समझना है, फिर चाहे संसार में रहें, चाहे भक्ति करें दोनों का आनंद समान रूप से उठा सकेंगे।

humarehanuman@gmail.com

आतंक से संघर्ष के लिए पड़ताल

• संदर्भ- याकूब मेमन के बहाने आतंकवाद से निपटने की मिले दिशा

मुकेश आनंद
सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ अधिवक्ता

याकूब मेमन को फांसी की सजा गहन जनचर्चा का विषय बन गई है और इस मुद्दे पर माहौल राजनीतिक, न्यायिक और धार्मिक आधार पर ध्रुवीकृत हो गया है। कानूनी बहस की बजाय यह राजनीतिक बहस हो गई है। सुप्रीम कोर्ट ने क्यूरेटिव (सुधार) याचिका खारिज कर दी है। मुख्य न्यायाधीश जस्टिस एचएल दत्तू, जस्टिस टीएस ठाकुर और जस्टिस अनिल आर दवे ने कहा कि ऐसे कोई तथ्य नहीं हैं, जिन्होंने याकूब मेमन के निष्पक्ष मुकदमे के अधिकार को विपरीत ढंग से प्रभावित किया हो। इस याचिका के खारिज होने के साथ यह माना गया कि फैसले का कानूनी पहलू अब तय हो गया है।

हालांकि, क्यूरेटिव याचिका के खारिज होने का मतलब याकूब के कानूनी सफर का खत्म होना नहीं है। 1993 के मुंबई धमाकों के दोषी ने 30 जुलाई को मौत की सजा पर अमल के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया है। उसकी याचिका में आरोप लगाया गया है कि 29 अप्रैल को टाडा कोर्ट ने उसके सारे कानूनी विकल्प खत्म होने के पहले ही मौत की सजा का वारंट जारी कर दिया था। यहां तक कि यह वारंट तब जारी हो गया, जब सुप्रीम कोर्ट में उसकी क्यूरेटिव याचिका लंबित थी। नई याचिका में 53 वर्षीय याकूब ने कहा कि 30 जुलाई को उसे फांसी पर लटकाने के लिए जारी डेथ वारंट प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ है और इसमें कानूनी रूप से आवश्यक प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। मंगलवार को सुप्रीम कोर्ट ने याकूब की 'सीमित' याचिका की सुनवाई की, जिसमें जैसा कि ऊपर कहा गया है, डेथ वारंट गैरजरूरी जल्दबाजी में जारी करने की दलील दी गई थी। बुधवार को सुप्रीम कोर्ट ने याकूब के इन सारे तर्कों को खारिज कर दिया और डेथ वारंट बहाल रखा।

पहली सुनवाई के बाद जजों की बेंच इस मुद्दे पर विभाजित ही रही, क्योंकि जहां जस्टिस दवे ने याचिका खारिज कर दी, वहीं जस्टिस कुरियन ने कहा कि क्यूरेटिव याचिका खारिज करने में उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया। उनके मुताबिक इस वजह से डेथ वारंट को स्थगित किया जाना चाहिए। इस माह की शुरुआत में जब सुप्रीम कोर्ट ने याकूब की दया याचिका खारिज कर दी थी तो टाडा कोर्ट ने मौत की सजा के लिए 30 जुलाई की तारीख मुकर्रर कर दी थी। याकूब की ओर से अपने समर्थन में पूर्व में दिए एक फैसले की नजीर दी गई। जस्टिस एके सिकरी और जस्टिस यूयू ललित ने एक युगल शबनम व सलीम के खिलाफ जारी डेथ वारंट खारिज कर दिया था। ये दोनों एक ही परिवार के सात सदस्यों की हत्या के दोषी पाए गए थे। सुप्रीम कोर्ट ने मौत की सजा पाए किसी दोषी के खिलाफ डेथ वारंट जारी करने के पहले उसके पालन के लिए कुछ आवश्यक सेफगार्ड तय किए हैं। उस फैसले में इस बात पर जोर दिया गया था कि निचली अदालतें अनुच्छेद 21 में दी गई उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना एकतरफा ढंग से डेथ वारंट जारी नहीं कर सकतीं।

सर्वोच्च न्यायालय ने साफ संदेश दिया था कि दोषी की सजा का समय तय करने के पहले उसकी सुनवाई होनी चाहिए। ऐसा न करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ होगा। निचली अदालतें कानूनी रूप से फांसी की सजा पाए दोषी को सजा का समय तय करने के पहले पूर्व सूचना देने के लिए बाध्य हैं ताकि वह अपने वकील से विचार-विमर्श कर वारंट जारी करने की प्रक्रिया में अपना पक्ष रख सके। इसे मूलभूत अधिकारों में एक माना जाता है। इसके अलावा वारंट की एक प्रति तत्काल दोषी को उपलब्ध कराई जाती है और जरूरी हुआ तो उसे कानूनी सहायता भी मुहैया कराई जाती है। हालांकि, मेमन के मामले में डेथ वारंट 'ओपन एंडेड' नहीं था और कोर्ट ने शेष प्रक्रिया का पालन किया या नहीं, यह तथ्यात्मक प्रश्न है। रॉ के पूर्व शीर्ष अधिकारी बी रमन (दिवंगत) ने कहा था कि मेमन ने विस्फोट की गुत्थी सुलझाने में जांच एजेंसियों की महत्वपूर्ण मदद की थी। यह लेख सार्वजनिक है। यह सही है कि मेमन ने विस्फोट में पाकिस्तान की लिप्तता और विस्फोटकों को लेकर आतंकियों को प्रशिक्षण देने के बारे में अहम जानकारी दी थी। उस आधार पर ही सबूत इकट्ठा किए थे। क्या इसे राष्ट्रसेवा मानना चाहिए, यही इस मामले में दया दिखाने के अनुरोध का आधार है। याकूब के वकीलों ने दलील दी है कि याकूब को सह-अभियुक्तों के ऐसे इकबालिया बयानों के आधार पर सजा सुनाई गई है, जो बाद में बयानों से मुकर गए थे। मेमन की मौत की सजा पर पुनर्विचार करते हुए सुप्रीम कोर्ट को अप्रैल 2013 में निर्धारित किए गए सिद्धांत पर भी विचार करना होगा। शंकर किशन राव खडे बनाम महाराष्ट्र के इस मामले में अदालत ने कहा था कि 'मौत की सजा तभी सुनाई जा सकती है, जब सजा कम करने के पक्ष में कोई भी परिस्थितियां या तथ्य मौजूद न हों।' फैसले में यह भी कहा गया था कि मौत की सजा सिर्फ इसलिए नहीं सुनाई जा सकती कि संबंधित जज को यह उचित लगता है। मौत की सजा समाज को केंद्र में रखकर सुनाई जानी चाहिए और अदालत को समाज में मौजूद नफरत, अत्यधिक गुस्सा और अपराध के प्रति मौजूद विद्वेष जैसे तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए। यदि संवैधानिक बाध्यताओं के कारण स्थिति की मांग के अनुरूप अदालतें मौत की सजा सुनाती हैं तो यह उचित होगा, क्योंकि संवैधानिक बाध्यताओं में लोगों की इच्छा व्यक्त होती है, सिर्फ जजों की इच्छा नहीं।

यह मामला कई अन्य कारणों से भी महत्वपूर्ण है। लंबे समय से भारत 'सॉफ्ट स्टेट' की छवि से संघर्ष कर रहा है। आरोप लगाया जाता रहा है कि अन्य राष्ट्रों के विपरीत भारत कठोरता से कार्रवाई नहीं करता और इसीलिए उन तत्वों का निशाना बनता है, जो इसे जख्म पहुंचाना चाहते हैं। नई पीढ़ी के उदय के साथ ही आतंकियों व जघन्य अपराधों के खिलाफ आक्रामक नीति के लिए दबाव बढ़ गया है। यही भावना न्यायपालिका और देश की अन्य संस्थाओं में व्यक्त होने की अपेक्षा की जाती है। इस मामले में न्याय देने की प्रक्रिया में होने वाली अनावश्यक देरी का मुद्दा भी प्रमुखता से सामने आया है। अंतिम फैसला आने में 22 साल लगने के बाद भी सजा को अमल में लाने पर बहस जारी है। मुकदमा चलाने वाली एजेंसियों का प्रक्रिया संबंधी अज्ञान भी न्यायदान में विलंब का कारण है और पूरी व्यवस्था को ही प्रशिक्षित और जरूरी साधनों से लैस बनाने की जरूरत है। इसलिए यह कहना उचित होगा कि इस मामले में न सिर्फ याकूब, बल्कि पूरी न्याय व्यवस्था और राष्ट्र की भावना भी कठघरे में है। सुप्रीम कोर्ट ने अपने ताजा फैसले में जनभावनाओं का ख्याल रखा है। इसका अंतिम नतीजा शायद आतंकवाद के खिलाफ संघर्ष को सही दिशा देने में निकले।

lawexcel@gmail.com

निचली अदालतें अनुच्छेद 21 में दी गई उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना एकतरफा ढंग से डेथ वारंट जारी नहीं कर सकतीं। ऐसा करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ होगा।

मौत की सजा समाज को केंद्र में रखकर सुनाई जानी चाहिए। अदालत को समाज में मौजूद नफरत, अत्यधिक गुस्सा और अपराध के प्रति मौजूद विद्वेष जैसे तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

लंबे समय से भारत 'सॉफ्ट स्टेट' की छवि से संघर्ष कर रहा है। आरोप लगाया जाता रहा है कि अन्य राष्ट्रों के विपरीत भारत कठोरता से कार्रवाई नहीं करता और इसीलिए उन तत्वों का निशाना बनता है, जो इसे जख्म पहुंचाना चाहते हैं।

ट्वीट्स

अमर हो गए डॉ. कलाम

जब दिल कहे किसी से मिलने के लिए तो देरी नहीं करनी चाहिए। मैं हमेशा कलाम साहब से मिलना चाहता था और मुझे इसके लिए प्रयास करने थे। यह मेरा नुकसान है। मुझे हमेशा उनकी याद आएगी।
- सलमान खान, अभिनेता

एक्यू खान कहते हैं- डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम औसत दर्जे के वैज्ञानिक थे। खान साहब, छोटी-मोटी चोरियों से तो यह फिर भी अच्छा है।
- राजदीप सरदेसाई, वरिष्ठ पत्रकार

'ऑर्डिनरी' शब्दों के साथ बड़ी तारीफ ऐसे व्यक्ति की तरफ से आई है, जो गोपनीय तकनीक की दलाली करने के कारण चर्चा में आया था।
- उमर अब्दुल्ला, नेशनल कॉन्फ्रेंस

राजनेता याद तो कर रहे हैं पर बताते नहीं कि राजनीति में सादगी-ईमानदारी के लिए क्या किया। हर बात छवि बनाने का मौका नहीं है। एक की इमेज के सहारे अपनी इमेज गढ़ने लगते हैं। इससे राजनीति को बचना चाहिए पर राजनीति इमेज के अलावा है क्या।
- रवीश कुमार, एनडीटीवी

याकूब मेमन तो अपने तथाकथित बचाने वालों की दयालुता से ही मारा जाएगा। वे मानवीय उदारवाद की बजाय उसके दोष का ही महिमामंडन कर रहे हैं।
- शेखर गुप्ता, वरिष्ठ पत्रकार

मैं दोषियों को मृत्युदंड के खिलाफ हूं, लेकिन निर्दोष लोगों को मारने वाले हत्यारों के लिए दया भी मुझे मंजूर नहीं है। फिर भी दया याचिकाएं पूरी दुनिया की अदालतों में चलती हैं।
- मेहर तरार, पाक पत्रकार

आर्थिक प्रगति के बावजूद देश में तीन हजार बच्चों की रोज भूख से मौत होती है। यह शर्मनाक है और कोई इसके बारे में बात तक नहीं करना चाहता।
- देविंदर शर्मा, कृषि विशेषज्ञ

वेब भास्कर

ब्राजील-अर्जेंटीना बॉर्डर पर 2.7 किमी चौड़ी इगुजू नदी पर हैं 275 नेचुरल वॉटरफॉल

• अमेज़िंग

ब्राजील-अर्जेंटीना सीमा पर 1541 में स्पेनिश खोजकर्ता एल्वर नुनेज ने यह वॉटरफॉल खोजा था। उन्हें एक-एक कर 275 वॉटरफॉल दिखे। स्रोत ढूंढने पर पता चला कि इगुजू नदी पर ये प्राकृतिक तौर पर बने हैं, इसीलिए इन्हें इगुजू वॉटरफॉल कहा जाता है। इस शब्द का मतलब पानी और विशाल होता है। वर्ष 2011 में इसे 'न्यू सेवन वंडर्स ऑफ नेचर' घोषित किया गया। यह नदी पराग्वे को भी लाभान्वित करती है। • softschools.com

कोरिया के लिए महत्वपूर्ण है फेन्सिंग तार से बना पियानो

• नॉलेज

दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के साथ ही अगस्त 1945 में कोरिया दो भाग उत्तर व दक्षिण में बंट गया था। दोनों कोरिया के बीच 250 किमी लंबा और 4 किमी चौड़ा रास्ता है, जो 'डिमिलिट्राइज्ड ज़ोन' (असैनिकीकरण क्षेत्र, डीएमज़ेड) कहलाता है। नाम के विपरीत दोनों देशों की इस सीमा पर सैनिकों की भारी तैनाती रहती है। विश्वस्तरीय संगीत समूह गोंगम्योंग (गूंज) ने डीएमज़ेड के लिए आर्मी बेस में लाए गए फेन्सिंग के तारों से यह पियानो बनाया। इससे निकलने वाला संगीत अद्वितीय होता है। दक्षिण कोरिया का एकीकरण मंत्रालय इसकी देखरेख करता है। कोरिया विभाजन की 70वीं एनिवर्सरी के मौके पर 'सोल म्यूज़ियम ऑफ आर्ट' प्रदर्शनी लगा रहा है। उसमें यह पियानो न केवल दिखाया जाएगा, बल्कि इसके संगीत के लिए कलाकार प्रस्तुति भी देंगे।

सामान्य तारों की अपेक्षा फेन्सिंग के तारों से पियानो बनाने का कन्सेप्ट ली सियोंग-हा का

है। वे मंत्रालय के प्रोजेक्ट पर काम करते हैं। उन्होंने बताया कि वर्ष 2014 में पोप द. कोरिया आए थे, तब उन्हें कांटों का ताज पहनाया गया था। वह बॉर्डर फेन्सिंग के तारों से बना था। तभी उन्हें विचार आया कि फेन्सिंग के तार युद्ध और विभाजन के प्रतीक माने जाते हैं, लेकिन इस पियानों को वे शांति का प्रतीक बताते हैं।

• koreabizwire.com

ग्रीनरी के लिए हाईवे के ऊपर बनाएंगे अर्बन पार्क

• इनोवेशन

इजरायल के प्रमुख तटीय शहर तेल अवीव में हरियाली बढ़ाने के लिए सिटी काउंसिल ने प्रमुख अयालोन हाईवे पर 'अर्बन पार्क' बनाने की हरी झंडी दे दी है। 3,300 करोड़ रुपए लागत से 60 एकड़ क्षेत्र में यह पार्क पूरी तरह हरियाली को समर्पित रहेगा। उसमें स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स, रेस्त्रां और साइकिल पाथवे बनेगा। अर्बन पार्क को रेलवे स्टेशन और नदी से कनेक्ट किया जाएगा। इजरायल के लिए यह अब तक का सबसे महत्वकांक्षी प्रोजेक्ट है, क्योंकि इसके पहले देश में पर्यावरण को देखते हुए ऐसा कोई प्रोजेक्ट नहीं लाया गया था।

सिटी काउंसिल ने इसे लोगों के हित में बताया है, जबकि सोशल मीडिया पर मिलीजुली प्रतिक्रिया मिली है। ज्यादातर यूजर्स ने कहा कि यह प्रोजेक्ट बनकर तैयार होने के बाद लग्ज़री होना चाहिए, जिसका लाभ रईसों की बजाय आम लोगों को ज्यादा मिलना चाहिए। कुछ यूजर्स ने लाइनों में पानी की आपूर्ति एवं हाईवे पर वेंटीलेशन बनाए रखने की बातें कही हैं। अन्य यूजर्स ने कहा कि शहर को लंदन, पेरिस एवं न्यूयॉर्क जैसी मेट्रो सेवा पर ध्यान देना चाहिए।

• haaretz.co.il

नॉलेज भास्कर | कानून और अधिकार

बिन ब्याही मां ही बच्चे की सब कुछ पिता की अनुमति जरूरी नहीं

सुप्रीम कोर्ट की खंडपीठ ने हाल ही में फैसला दिया है कि बिन ब्याही मां अपने बच्चे की सब कुछ होगी। पिता के नाम के स्थान पर कई बार ऐसी मां को अड़चनें आती थी, इसी संदर्भ में यह फैसला दिया गया है। संभवतः यह पहली बार है कि न तो मां का और न ही उसके बच्चे का नाम जाहिर किया गया है। अदालत ने आदेश देते समय 'ममता' शब्द का इस्तेमाल करते हुए कहा कि मां बच्चे के हित को सबसे बेहतर समझती है।

वंदना शाह
वकील, फैमिली कोर्ट, हाईकोर्ट, मुंबई

कुछ समय पहले ही विधि आयोग ने सिफारिश की थी कि तलाक के मामलों में बच्चों को माता और पिता दोनों के साथ रहने का मौका मिलना चाहिए। बच्चों के हक में एक अहम फैसला सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश विक्रमजीत सेन और न्यायाधीश अभय सप्रे की खंडपीठ ने दिया है। इस फैसले में कहा गया है कि बिन ब्याही मां ही बच्चे की पालक होगी। इसमें पिता की अनुमति की जरूरत नहीं रहेगी।

इस मामले में जो तथ्य हैं वे कुछ इस तरह से हैं- एक बिन ब्याही ईसाई मां अपने नाबालिग बच्चे को बैंक खाते और बीमा पॉलिसी में नॉमिनी बनाना चाहती है। इसमें यदि किसी सूरत में मां को कुछ हो जाता है तो सारा लाभ बच्चे को मिल सकेगा। यहीं से सारी समस्याएं शुरू हुई। समस्त फॉर्म्स भरने के दौरान पिता का नाम भरने का कॉलम रहता है। मां नहीं चाहती थी कि पिता के नाम का खुलासा हो, क्योंकि उसकी बच्चे के पिता से कभी शादी नहीं हुई। न ही मां ने इस बात के लिए कोई नाराजगी जाहिर की। 5 साल का अबोध बच्चा कभी अपने पिता से नहीं मिला और न ही कभी पिता ने उससे मिलने में कोई रुचि दिखाई थी। न ही बच्चे को बड़ा करने में पिता ने कभी मां की मदद की।

जब इस मां ने निचली अदालतों में पिता का नाम न भरने की छूट मांगी, तो वहां से इस गुहार को नकार दिया गया। सभी जगह यह कहा गया कि पिता का नाम लिखना ही होगा, साथ ही बच्चे के पिता की ओर से लिखित अनुमति भी लगेगी, ताकि कानूनी जरूरतें पूरी की जा सकें। इस मां ने इससे इंकार किया तो उससे पालक या दत्तक प्रमाण-पत्र अदालत से लाने को कहा गया। निचली अदालतों में जब इस मां को बच्चे की एकमात्र पालक मानने की याचिका नहीं मानी गई तो वह गार्जियनशिप एंड वार्ड्स कानून की धारा 7 के तहत मामला सुप्रीम कोर्ट लेकर पहुंची।

किसी को पालक साबित करने के ये अधिकार अदालत के पास हैं।

(1) यदि अदालत को लगता है कि यह बच्चे की भलाई के लिए ठीक है, तभी अदालत इस तरह के आदेश दे सकती है-

(अ) किसी बच्चे या संपति या दोनों का पालक बना सकती है।

(ब) किसी व्यक्ति को उक्त बच्चे का पालक घोषित कर सकती है।

(2) इस धारा के अंतर्गत आदेश ऐसे किसी भी पालक को हटा सकते हैं, जो वसीयत या अन्य किसी दस्तावेज के आधार पर नहीं बनाए गए हैं। या इनको अदालत ने पालक घोषित नहीं किया हो।

(3) यदि किसी मामले में अदालत पालक तय करती है या वसीयत के मुताबिक कोई पालक है तो कोई दूसरा व्यक्ति पालक तब तक नहीं बन सकता, जब तक कि पहले पालक की अवधि समाप्त नहीं होती है।

सरल शब्दों में पालक की नियुक्ति अदालत द्वारा की जा सकती है। इसमें बच्चे की भलाई और उसके हितों को सबसे ऊपर रखा जाता है। यह दिलचस्प है कि इस मामले में महिला ईसाई है, लेकिन फिर भी अदालत ने हिंदू अल्पसंख्यक एवं पालक अधिनियम का जिक्र किया और आदेश समान आचार संहिता के तहत दिया। अदालत ने आदेश देते समय 'ममता' शब्द का इस्तेमाल करते हुए कहा कि मां बच्चे के हित को सबसे बेहतर समझती है।

इस फैसले से अदालत ने पिता पर भी यह भार डाला कि वह भी बच्चे की जिम्मेदारी को समझे। दूसरी ओर, इसमें मां की आय या अर्जन की क्षमता का भी ध्यान रखा गया है और वह किस हद तक बच्चे की देखरेख कर सकती है, इसको भी संज्ञान में लाया गया है। फिर भी कोई किसी भी आस्था या धर्म का पालन करता हो, माता- पिता के लिए बच्चे की भलाई सर्वप्रथम है।

जिस तरह से सभी फैसलों में होता है, इस फैसले में भी 'गेटकीपर्स' हैं। यदि इस मामले में पिता अदालत के फैसले को चुनौती देता है और बच्चे की भलाई को समझते हुए उसका जिम्मा उठाने को तैयार है तो अदालत इस तरह के आवेदन पर विचार करेगी। इस लिहाज से यह उस महिला की जीत नहीं, वरन बच्चे की भलाई की दिशा में प्रयास है। अन्यथा बच्चे इस तरह के मामलों में हमेशा हथियार या माता-पिता के अहंकार के बीच फुटबॉल बन जाते हैं।

इस फैसले में एक और चौंकाने वाली बात यह है कि कहीं भी मां, पिता और बच्चे का नाम जाहिर नहीं किया गया है। इसमें मां का नाम एबीसी लिखा है और केस एबीसी बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) के नाम से चला। बिन ब्याही मां का ठप्पा नाम जाहिर न होने से नहीं लगेगा, न ही बच्चे को इस निगाह से देखा जाएगा। सबसे अहम यह है कि वह ऐसी मां है, जो अपने बच्चे से प्रेम करती है। यहां तक कि पिता का नाम भी इसमें नहीं दिया है जो पूरे मामले में खलनायक है। वह सिर्फ कागज पर ही पिता है, वास्तव में नहीं।

इस फैसले में साफ कहा है, कोई जवाबदारी नहीं है तो कोई अधिकार भी नहीं होगा- इस एक लाइन से कई लोगों में उम्मीद जगी है- घरों में नौकरानी का काम करने वाली सुलभा की शादी गांव में हुई है। उसे हमेशा डर रहता है कि उसका पति उसके 6 साल के बच्चे के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं निभाता है, लेकिन अंततः वह उसका जैविक पिता रहेगा और उसका अधिकार रहेगा, लेकिन इस एक पंक्ति ने बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया है।

सामाजिक और कानूनी पक्ष

यह फैसला समाज में बदलाव का एक अच्छा उदाहरण है। किसी कानून के विकास में समाज आइने का काम करता है। समाज ने उन महिलाओं को स्वीकार करना शुरू कर दिया है, जिन्होंने जीवन में एक गलती की है और उसका खामियाजा वह बच्चे का भार उठाकर कर रही है। वह पूरा जीवन इस दाग के साथ क्यों गुजारे कि वह बिन ब्याही मां है? जस्टिस सेन ने टिप्पणी की है कि 'आज के समाज में महिलाएं बच्चों को अकेले ही बढ़ा कर रही हैं। ऐसे में अनिच्छुक पिता या ऐसा पिता जिसे चिंता ही नहीं है, उसे थोपने का तात्पर्य नहीं है।'

• फैक्ट

अमेरिका में पिछले कुछ वर्षों में बिन ब्याही मां बनने के अनुपात में गिरावट आई है। वहां पर वर्ष 2008 में प्रति हजार में 52 बिन ब्याही मां थीं। वर्ष 2013 में यह दर घटकर प्रति हजार 45 रह गई है।